पदार्थवाद

[एक तात्त्विक अध्ययन]

★ रामचन्द्र जैन ★

आदर्श साहित्य संघ

आठ आना

प दा र्थ वा द

[श्री रामचन्द्र जैन]
बी० ए० एल० एल० बी०

प्रकाशकीय—

स्वतन्त्र भारत के सर्वोदय और विश्व के नव निर्माण में आज ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो आध्यात्मिक विश्वास के साथ जन गण में चरित्र-बल जागृत कर सके और संत्रस्त मानवता का पथ-प्रदर्शन कर नैतिकता का सञ्चार कर सके। इस दिशा में अपने सृजनात्मक लक्ष्य को लेकर 'आदर्श-साहित्य-संघ' विभिन्न मालाओं के रूप में सुव्यवस्थित प्रकाशन करता रहा है और आज भी इसमें सक्रिय प्रयत्नशील है।

'पदार्थवाद' यह जीव अजीव का संक्षिप्त पर सुन्दर विश्लेषण है। जिसका विवेचन एक निश्चित दर्शन के आधार पर प्रायः सब ही पहलुओं को लेकर किया गया है। आज के युग से प्रभावित मार्क्स के दर्शन की भी कहीं कहीं तुलनात्मक विचार-सरणी है, जो लेखक के गम्भीर अध्ययन का प्रतीक है। नव तत्त्व और उसके वस्तु ज्ञान को समझने में विश्वास है यह पुस्तक अधिक उपयोगी होगी।

प्रस्तुत कृति के लेखक रायसिंह नगर (राजस्थान) के एक प्रतिभाशाली साहित्यकार और भारतीय-दर्शन के अध्ययनशील विचारक है। जिनकी प्रगतिशील विचार-शीलता की छाया 'पदार्थवाद' के इस ठोस निबन्ध में मिलती है।

विशुद्ध अहिंसा-दर्शन के विकास और तत्त्व-विज्ञान के प्रसार में 'आत्म-दर्शन-माला' की यह कृति प्रस्तुत करते हुए हमें गौरव है।

साहित्य-विभाग —
आदर्श साहित्य संघ

शुभकरण दशानी
'अध्यक्ष'
पन्नालाल भन्साली
'मन्त्री'

प्रारम्भिका

प्राणीमात्र के क्रिया-कलाप व्रत और अव्रत में बंटे हुए हैं। जीव जो जो कार्य मोक्ष-साधन के लिए करता है, वह व्रत है और जो संसार-साधना के लिए करता है वह अव्रत है। व्रत का सम्बन्ध केवल आत्मिक विकास से है। ज्यों-ज्यों जीव के क्रिया-कलाप में अव्रत की कमी व व्रत की वृद्धि होगी, आत्मा निरन्तर ऊपर उठती जावेगी। यह प्रत्येक दर्शन का शाश्वत नियम है।

व्रत का आधार संवर व निर्जरा है। आश्रव अव्रत का आधार है। आजकल की आम भाषा में व्रत मोक्ष का मार्ग है और अव्रत संसार का।

मेरा यह विश्वास है कि संसार के मार्ग को वैज्ञानिक रीति से जितना मार्क्स ने निरुपण व निर्धारित किया है वैसा कोई दूसरा मार्ग आज उपलब्ध नहीं। सांसारिक उन्नति के लिए मार्क्स-वाद ही सही रास्ता दिखाता है। मार्क्स-वाद में लोभ, तृष्णा, शोषण को समाप्त कर समानता को स्थापित करने का उद्देश्य किसे भला न लगेगा? किन्तु इसमें कमी यही है कि यह समानता की स्थिति सांसारिक विकास के लिए ही है, आत्मिक विकास के लिए नहीं।

यहाँ पर जैन-दर्शन मार्क्स-दर्शन की सहायता के लिए आता है। वह कहता है कि समानता आध्यात्मिक होना चाहिए।

भौतिक समानता तो जीव के सुख व हित में पर्याप्त नहीं। आध्यात्मिक समानता ही मोक्ष-स्थिति है और वही जीव के लिए पूर्ण सुख है।

इसीलिए जैन-दर्शन आत्म-दर्शन और मार्क्स-दर्शन भौतिक-दर्शन है। इन दोनों का सम्बन्ध पदार्थ-दर्शन है। पदार्थवाद की सिद्धि ही इस लेख का ध्येय है। दोनों दर्शनों को समझ लेने से स्वयंमेव अव्रत में कमी व व्रत में वृद्धि होगी। अगर ऐसा हुआ तो पुस्तक लिखने का ध्येय सफल होगा। जय हिंद।

—रामचन्द्र जैन

१

'पदार्थवाद' आत्म-दर्शन माला का प्रथम पुष्प है। जिसका उद्देश्य विशुद्ध तत्त्व-ज्ञान के साथ भारतीय और जैन-दर्शन का प्रसार करना है। जिसके सुश्रृङ्खलित प्रकाशन में चूरू (राजस्थान) के अनन्य साहित्य-प्रेमी श्री हनूतमलजी सुराना ने अपने स्व० पिता श्री मन्नालालजी की पुनीत स्मृति में नैतिक सहयोग के साथ आर्थिक योग देकर अपनी सांस्कृतिक व साहित्य-सुरुचि का परिचय दिया है, जो सबके लिये अनुकरणीय है। हम आदर्श-साहित्य-संघ की ओर से सादर आभार प्रकट करते हैं।

—प्रकाशन मंत्री

अनुक्रम

१

नव तत्त्व और षड्द्रव्य

जैन-शास्त्र में नव तत्त्व और षड्द्रव्य के स्पष्ट और शुद्ध ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, बंध, निर्जरा और मोक्ष ये नव तत्त्व हैं। तत्त्व का अर्थ है; "तस्य भवनं तत्त्वम्" अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसका वैसा होना। तत्त्व का अर्थ है, पदार्थ का स्वरूप। स्वरूप का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।

द्रव्य गुणों के आश्रय को कहते हैं। वह एक अखंड पदार्थ है, जिसमें गुण सदा पाये जावे व जिसमें निरन्तर क्रम से पर्याय होते रहें। द्रव्य का लक्षण सत् है। "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं-सत्" अर्थात् सत् में समय समय तीन स्वभाव पाये जाते हैं—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य। द्रव्य द्रवणशील और परिणमनशील होता है। द्रव्य गुण पर्यायवान् होता है।

जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल—ये छः द्रव्य हैं। पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल—ये अजीव के पांच भेद हैं। अतः षड्द्रव्य के प्रमुख दो ही भेद हैं; जीव और अजीव।

नव तत्त्वों में अजीव, पुण्य, पाप और बंध अजीव हैं। जीव संवर, आश्रव, निर्जरा और मोक्ष जीव हैं। नव तत्त्वों में चार तत्त्व अजीव और पांच तत्त्व जीव हैं। अतः नव तत्त्वों के भी प्रमुख भेद—जीव और अजीव दो ही हैं।

जिन पदों से अर्थ का बोध हो, उसे पदार्थ कहते हैं। अर्थ वे हैं जो जीव से जानने योग्य मोक्ष मार्ग में प्रयोजनभूत हैं। ऐसे पद से जानने योग्य अर्थ या पदार्थ नौ प्रकार के हैं। जो नव तत्त्व ही हैं। फिर पदार्थ और तत्त्व में भेद कहां? तत्त्व गुण के व्यष्टिगत दृष्टिकोण को कहते हैं यानी वस्तु का स्वरूप। यहां वस्तु का विश्लेषण-अर्थ संसार से निष्पेक्ष भाव से किया गया है। पदार्थ गुण के समष्टिगत दृष्टिकोण को कहते हैं। दूसरे शब्दों में इसे जीवन-विकास की योजना कह सकते हैं। इस योजना के नव विभाग हैं और इसमें प्रत्येक विभाग को पूर्णतया समझने व तदनुसार सञ्चालित करने की आवश्यकता होती है। तत्त्व जीवन का विश्लेषण करनेमें सहायक होता है जबकि पदार्थ जीवन को परिवर्तनशील और विकसित होने में सहायक होता है। एक का प्रयोजन है समझाना, दूसरे का प्रयोजन है बदलना।

विश्लेषण के अन्तिम दौरे में पदार्थ के दो भेद दृष्टिगोचर होते हैं, जीव और अजीव। जीव का लक्षण चैतन्य और अजीव का लक्षण अचैतन्य है। (क्या सम्यग्ज्ञान में चैतन्य और अचैतन्य यह भेद दृष्टि-गोचर होता है?)

२

जीव और अजीव

संसारी जीव अजीव से भिन्न दृष्टिगोचर नहीं होता। मुक्तावस्था में जीव का अजीव के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसका इतना ही अर्थ है कि मुक्तावस्था में केवल मात्र शुद्ध जीव की ही स्थापना है वहां अजीव अवस्थित होता हुआ भो कारण के अभाव से मुक्तात्मा से संबंध नहीं कर सकता। एक वस्तु दूसरी वस्तु से अभिन्नवत् होते हुए भी उससे विलग हो सकती है। इससे जीव और अजीव की वास्तविक भिन्नता सिद्ध नहीं होती।

जीव अनादि और अनन्त है। कर्म प्रवाह रूप से अनादि और शान्त हैं। जोव और कर्म का सम्बन्ध अनादि और शान्त है। कर्मवर्गणारूप पुद्गल के स्कन्ध जीवके राग-द्वेषादिक परिणामों के निर्मित से जीवके साथ बंध कर ज्ञानावरणादि रूप हो जाते हैं। बंधने के पहले वे कर्म योगी पुद्गल कहलाते हैं और कारण के उपस्थित होने पर वे जीव के साथ बंध कर कर्म कहलाते हैं। जीव और कार्माण शरीर यानी जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि है। कर्म पुद्गल है। अतः जीव और पुद्गल का सम्बन्ध अनादि है। पुद्गल अजीव-तत्त्व है। अतः विश्लेषण की अन्तिम

दृष्टि में जीव और अजीव तत्त्व का अनादि सम्बन्ध है। इसे परम्परागत सम्बन्ध भी कहते हैं। यहां 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है किन्तु यह शब्द भ्रमात्मक है। 'सम्बन्ध' का अर्थ है दो स्वतन्त्र वस्तुओं का मिलाप। इसमें मूलतः दो स्वतंत्र सत्ताओं की कल्पना निहित है। एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं एक आगे का और दूसरा पीछे का। व्यवहार में इन दोनों पहलुओं के सम्बन्ध को जाहिर कर सकते हैं किन्तु तात्त्विक दृष्टि में यह दो विरोधी वस्तुओं का सम्बन्ध नहीं किन्तु एक ही सिक्के को दो दृष्टिकोणों से देखने का यह तारतम्य सम्बन्ध है। जीव और पुद्गल का सम्बन्ध इससे विपरीत है।

ऐसा कोई दृश्य अजीव पिण्ड नहीं जो प्रारम्भ में या कभी न कभी जीव से सम्बन्धित रहा हो। सूखी पत्ती को लीजिए। सूखने से पहिले इसमें वनस्पतिकाय का एकेन्द्रिय जीव था। कपड़े का ही विश्लेषण करें। जिस समय यह कपास था इसमें एकेन्द्रिय जीव तत्त्व का समावेश था। मेरे विचार में विश्व के इतिहास से आज तक कोई भी ऐसा दार्शनिक या विचारक पैदा नहीं हुआ जो यह सिद्ध कर सका हो कि आजका दृश्य अजीव तत्त्व कभी सदा से ऐसा ही था और किसी भी समय इसका जीव-तत्त्व से सम्बन्ध नहीं था।

जैनेतर दार्शनिकों को यहां पर यह आपत्ति हो सकती है कि वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी जीव नहीं है। हमने जीव का लक्षण चैतन्य युक्त किया है। चैतन्य का अर्थ ज्ञान-शक्ति है। जल,

वायु, अग्नि और पृथ्वी में युक्ति सिद्ध ज्ञान-शक्ति है अतः जैन शास्त्रों में वायु, अग्नि और पृथ्वी को भी जीव श्रेणी में माना गया है।

जीव और अजीव की भिन्नता दैनिक जीवन में निरन्तर दृष्टिगोचर होती है। घृत को लीजिये। दही बिलोने से घृत की उत्पत्ति होती है और पीछे छाछ रह जाती है। घृत दही में निहित है। किन्तु उसे अलग करने की एक विशिष्ट प्रक्रिया है। घृत निकलने पर पीछे अवश्यमेव छाछ ही रहेगी। इसी प्रकार कर्म-युक्त जीव को शुद्ध जीव बताया जा सकता है। पीछे कर्म रह जायगा। पुद्गल से जीव अलग हो जायगा। किन्तु छाछ और घृत के मिलाने से दही नहीं बन सकता। छाछ और घृत दो भागों में बंटने से पहले दही एक है, इस अवस्था में छाछ और घृत की अभिन्नता है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि विशिष्ट प्रक्रिया के क्रियाशील होने पर इसका एक अंश दूसरे से अलग न हो जावेगा। इसी उदाहरण को सरसों के दाने व उससे निकलने वाले तेल से समझाया जा सकता है। जो सत्ता अब 'सरसों' है वह पीलने की क्रिया के पश्चात् खल और तेल दो भागों में विभाजित हो जावेगी किन्तु पीलने की क्रिया से पहले उसकी सत्ता 'एक' है। अतः जीव और अजीव एक ही महासत्तात्मक 'पदार्थ' के दो पहलू हैं।

३

गुणात्मक सत्कार्यवाद

इस स्थापना पर यह आपत्ति की जाती है कि जिस वस्तु का जो गुण है उससे उसी प्रकार की वस्तु की उत्पत्ति हो सकती है। 'है' से वही वस्तु उत्पन्न हो सकती है जो स्वयं 'है'। 'नहीं' से वही वस्तु उत्पन्न हो सकती है जो 'नहीं' है। 'है' से 'नहीं' और 'नहीं' से 'है' की उत्पत्ति असम्भव है। इस सिद्धान्त की भी सीमा है। जहां कि यह सिद्धान्त लागू होता है वहां तक तो ठीक है किन्तु जब इसका प्रयोग इसकी सीमा से बाहर कर दिया जाता है तब इसमें दोष आ जाता है। यह सिद्धान्त सांख्य-शास्त्र का प्रसिद्ध 'सत्कार्यवाद' का सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त विकास का है, क्रान्ति का नहीं। विकास का अर्थ है एक ही दायरे में बढते जाने के अवसर। जब एक ही दायरे में बढ़ने का अवकाश नहीं रहता तो उस दायरे को तोड़ कर बढ़ने का प्रयत्न किया जाता है। इसे क्रान्ति कहते हैं। गर्भ मां के पेट में नौ महीने तक बढता जाता है। पर विकास सत्कार्यवाद के सिद्धान्त के अनुसार होता है। नौ महीने के बाद गर्भ को मां के पेट से बढने का अवकाश नहीं अतः वह इस सीमा को तोड़

डालता है और गर्भ से 'बच्चा' बन जाता है। यह 'बच्चा' बन जाना एक क्रान्ति है। गर्भ 'बच्चा' कदापि नहीं। 'गर्भ' में गुणात्मक परिवर्तन होने का परिणाम बच्चा है। यह प्रक्रिया निश्चित नियमों के अनुसार होती है। अतः हमें सत्कार्यवाद के सिद्धान्त में उपरोक्त वृद्धि करने की आवश्यकता है। इसे हम 'गुणात्मक सत्कार्यवाद' कह सकते हैं। यदि हम द्वन्द्वात्मक या गुणात्मक सत्कार्यवाद के सिद्धान्त को अपनायें तो हमारी समस्याओं का समाधान मिल जाता है।

यदि सत्कार्यवाद के उपरोक्त सिद्धान्त को सम्पूर्ण स्थितियों में मान्य ठहराया जाय तो फिर जीव कदापि मुक्त हो ही नहीं सकता। जीव और कर्म अनादि काल से 'सम्बन्धित' हैं। जीव+कर्म-इसका विश्लेषण कहीं तक भी कीजिए किन्तु निष्कर्ष निकलेगा—जीव+कर्म। यदि जीव+कर्म का निष्कर्ष केवलमात्र जीव निकला तो 'है' (जीव+कर्म) से 'नहीं' (जीव+कर्म-कर्म) की उत्पत्ति हुई क्योंकि कर्म का निषेध हो गया। 'है' का निषेध इस सिद्धान्त के अनुसार कभी हो नहीं सकता। ऐसी दशा में जीव कर्म रहित कदापि नहीं हो सकता और कर्म रहित हुए बिना जीव मुक्तावस्था को प्राप्त नहीं हो सकता।

इस सिद्धान्त का सबसे जबर्दस्त समर्थन जैन शास्त्र विहित जीव-विकास की चौदह सीढ़ियों यानी चौदह गुणस्थानक से भी होता है। पञ्चम गुणस्थान श्रावक का है और छठा गुणस्थान साधु का। किन्तु साधु, श्रावक का विकसित रूप नहीं।

दोनों में मौलिक और क्रान्तिकारी भेद है। श्रावक का व्रत देश-विरति व्रत है। श्रावक उसे चाहे कितने ही परमोत्कृष्ट रूप को ले जायें किन्तु उसका व्रत देश-विरति व्रत' ही कहलायेगा यहाँ तक कि प्रतिमाधारी श्रावक का व्रत भी देश-विरति व्रत ही है। सत्कार्यवाद के सिद्धान्त के अनुसार देश-विरति व्रत से देश-विरति की ही उत्पत्ति हो सकती है सर्व-विरति व्रत की कदापि नहीं। यदि देश विरति व्रत को सर्व विरति व्रत का स्वरूप प्राप्त करना है तो जीव को गुणात्मक परिवर्तन करना होगा, केवल मात्र परिमाण में ही नहीं किन्तु गुण में भी। देश-विरति व्रत से सर्व-विरति व्रत की ओर गति महान क्रान्तिकारी परिवर्तन की सूचक है।

नवमें गुणस्थानक तक द्वेष, दसवें गुणस्थानक तक राग और ग्यारहवें गुणस्थानक तक जीव में मोह की स्थिति रहती है। द्वेष जो जीव के साथ अनादिकाल से चला आ रहा था उसका सर्वथा नाश होता है। 'है' 'नहीं' में परिवर्तित हो गया। यही दशा राग और मोह की भी होती है। गुणात्मक सत्कार्यवाद के सिद्धान्त में इस प्रकार 'है' से 'नहीं' और 'नहीं' से 'है' में परिवर्तन होने का पूर्ण अवकाश है। वास्तव में यह 'है' से 'नहीं' और 'नहीं' से 'है' की उत्पत्ति है ही नहीं क्योंकि स्थितियों के परिवर्तन से 'उत्पाद' की सत्ता निरन्तर परिवर्तित होती है और एक 'उत्पाद' का 'व्यय' उसके पूर्ववर्ती 'उत्पाद' का व्यय नहीं किन्तु नव्य स्थापित 'उत्पाद' का ही 'व्यय' है।

५

अनेकान्तवादका समर्थन

जैन-दर्शन की चाबी केवली द्वारा प्रतिपादित अनेकान्तवाद के सिद्धान्त में है। अनेकान्तवाद जैन-दर्शन का मूलाधार है। इस सिद्धान्त के अनुसार जीव अजीव से भिन्न भी है और अभिन्न भी। जीव अजीव से मुक्त हो सकता है अतः जीव को अजीव से भिन्न कहने में कोई आपत्ति नहीं। किन्तु जीव अनादि काल से अशुद्ध है, कर्म-मलयुक्त है अतः जीव अजीव से असंपृक्त भी है। यदि जीव को असंपृक्त न मान कर भिन्न ही माना गया तो उसकी अवस्था कर्मरहित माननी होगी जो केवल जीव की शुद्धावस्था में ही सम्भव है और जीव का अनादिवाद भी जीव का मोक्षवाद ही होगा। जब अनादिकाल से जीव मुक्त मान लिया जायगा तो उसके मुक्त होने की कोई आवश्यकता न रहेगी।

सांख्य-दोष

सांख्य दर्शन में पुरुष और प्रकृति, जीव और अजीव को स्वतन्त्र माना गया है। यदि जैन-दर्शन में दोनोंको सांख्य-दर्शन की तरह स्वतन्त्र मान लिया गया तो इसमें भी सांख्य-दर्शन दोष आ जायेगा। शुद्ध जीव के साथ कर्मका सम्बन्ध कब हुआ, उसके साथ कर्म के सम्बन्ध की क्या आवश्यकता थी, किसने किसको पहिले आकर्षित किया, और इसके मेल 'सम्बन्ध' की प्रक्रिया क्या रही? 'सम्बन्ध' को चाहे अनादि माने चाहे परम्परागत, इसमें सम्बन्ध-दोष तो रहेगा ही। स्वयं जाल गूंथ कर उसे खोलने वाले को कोई बुद्धिमान नहीं कहता। 'बैठी नायन पाटड़ा मूंडे' की नीति कभी प्रशंसनीय नहीं मानी गई।

सम्बन्ध तत्त्व

यदि दो स्वतन्त्र तत्त्वों का सम्बन्ध मान लिया जाय तो फिर धर्म तत्त्व की आवश्यकता नहीं रहती। दो स्वातन्त्र वस्तुओं में सम्बन्ध कारणवाद से नहीं हो सकता। कार्य कारण परम्परा समान धर्मी वस्तुओं के सम्बन्ध से अपेक्षित है। जीव और अजीव का सम्बन्ध अकारण ही मानना पड़ेगा। जो सम्बन्ध अकारणवाद से स्थापित हुआ, उसकी समाप्ति कारणवाद से नहीं हो सकती। कारणवाद का अर्थ है—धर्माचरणवाद। धर्म के आचरण की तभी सफलता हो सकती है जब कुछ खराबी को दूर कर उसके स्थान पर शुद्धि की स्थापना वाञ्छनीय होती है। जब जीव और अजीव का अपने आपही सम्बन्ध हो गया तो वह अपने आपही समाप्त हो जायगा। फिर त्याग और तपस्या इन कष्टदायक साधनों का उपयोग क्या? अकारणवाद और कारणवाद का कोई समन्वय नहीं।

सम्बद्ध तत्त्व न्याय शास्त्र के भी विरुद्ध है। सम्बन्ध होने से पहले दो स्वतंत्र भिन्न भिन्न तत्त्वों की कल्पना अनिवार्य है। दो समान गुण-धर्मियों में ही मेल हो सकता है, विरोधी गुण-

धर्मियों में पारस्परिक मेल की सम्भावना नहीं। यदि विरोध पर्याय का है तो दोनों में कुछ सामान्य तत्त्व अवश्य विद्यमान रहते हैं किन्तु जहां विरोध गुण का है वहां कोई सामान्य तत्त्व वर्त्तमान नहीं रहता अतः दोनों का मेल न्याय विरुद्ध है। आत्म और अनात्म का मेल न्याय विहित नहीं। जीव और अजीव का 'सम्बन्ध' अन्याय संगत है। न्याय से ही इस अन्याय का परिहार हो जाता है कि वस्तु का स्वरूप किसी भी पर्याय में नहीं बदलता। यदि इस अ-न्याय को स्वीकार कर लिया जाय तो जीव कभी मुक्त नहीं हो सकता किन्तु वास्तव में वह मुक्तावस्था में अवश्य बदल जाता है। यह न्याय-संगत परिवर्तन इसलिये सम्भव है कि जैन-दर्शन गुणात्मक सत्कार्यवाद के सिद्धान्त का मूलतः प्रतिपादन करता है। 'गुणात्मक सत्कार्यवाद' आधुनिक समय में एक राजनैतिक पारिभाषिक शब्द बन गया है। इसका विस्तृत वर्णन हमने अपनी पुस्तक 'शुद्ध गीता' क्षेपक रहित गीता की टीका में किया है। वर्तमान संदर्भ में इसका संक्षेपतः वर्णन किया है।

पदार्थवाद से शुद्धात्मवाद

इस विवेचन से यह प्रतीत होता है कि जीव और अजीव दो स्वतन्त्र तत्त्व होते हुए भी अनादि काल से सम्बन्धित है। इन दोनों का महा सत्तात्मक पदार्थ में समावेश हो जाता है। पदार्थ की स्थापना जैन-शास्त्र सम्मत और जैन परिपाटी के अनुकूल है। जैन-दर्शन का मूलाधार पदार्थवाद है और पदार्थवाद परमोत्कृष्ट रूप में शुद्धात्मवाद है और पदार्थवाद से शुद्धात्मवाद का स्पष्ट और सही ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।

आजकल विश्व में मार्क्सवाद के राजनैतिक-दर्शन का बोल-बाला है और संसार को इस दर्शन में शान्ति का सन्देश दिखलाई पड़ता है। इस दर्शन के बहुत से विकृत रूप भारतीय मस्तिष्क के सन्मुख पेश किये गये हैं और इसे भौतिकवाद या पुद्गलवाद से सम्बन्धित किया जाता है; किन्तु वास्तव में इसका ऐसा स्वरूप नहीं। मार्क्सवाद एक राजनैतिकवाद है और इसके दर्शन को पदार्थवाद (Materialisem) कहते हैं।

भारत में मार्क्स-दर्शन का स्वरूप कुछ विचित्र रूप में पेश किया जाता है। श्री सम्पूर्णानन्दजी ने अपनी पुस्तक 'समाजवाद'

में मार्क्स-दर्शन को 'भौतिकवाद' का नाम दिया है और भूत से उनका अर्थ अचेतन तत्त्वों से है। इसी का शाब्दिक रूपान्तर श्री स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस के किसी अध्यापक या छात्र के एक लेख में कुछ समय पहले दिखाई दिया था। उसमें मार्क्स-दर्शन की जैन 'पुद्गलवाद' के साथ साम्यता स्थापित की गई थी। पुद्गलवाद में चैतन्य को कोई स्थान नहीं। पुद्गल अजीव तत्त्व है, मार्क्सवाद का बुनियादी शब्द Matter है। मार्क्स का Matter अजीव अवस्था में भी है और जीव अवस्था में भी। मार्क्स के Matter में चैतन्यवाद को पूरा पूरा स्थान है। मार्क्स Matter को जीवतत्त्व (Animate) और अजीव तत्त्व (Inanimate) दो भागों में विभाजित करता है। मार्क्स का शब्द Matter जैन-दर्शन के 'पदार्थ' शब्द का सही और शुद्ध रूपान्तर है और जैन-परिभाषा में जो भाव 'पदार्थ' शब्द से बोधित होता है वही भाव मार्क्स के Matter शब्द से बोधित होता है।

पदार्थवाद की इस स्थापना के बाद हम उसके शुद्धात्मवाद तककी स्थितिके सम्बन्धमें विचार करेंगे। जैन-विचारधारा के साथ इस अवसर पर मार्क्स विचारधारा पर विचार करना भी अभिष्ट होगा। मार्क्स-दर्शन पर सबसे प्रामाणिक और अधिकृत पुस्तक मार्क्स-दर्शन की पाठ्य-पुस्तक (Text Book of Marxist Philosophy) है जो सन् १६४४ में लेनिनग्राड (रूस) के सर्वोच्च दर्शन-विद्यापीठ द्वारा तैयार की गई है।

इस पुस्तक में मार्क्स, एंजिल्स, लेनिन और स्टालिन (मार्क्सवाद के चार महान् आधार-स्तम्भ) के अधिकृत विचारों का समन्वय है। मार्क्स-दर्शन की विचारधारा को पदर्शित करनेवाले उद्धरण इसी पुस्तक में से दिये गये हैं।

उपरोक्त विशद विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि वास्तव में मुक्तावस्था को छोड़कर जैन-दर्शन में जीव-वाद को कोई स्थान नहीं। आप इस स्थापना से आश्चर्यान्वित न हों। यह सही और शुद्ध स्थापना है। जीव का स्वरूप चैतन्य है। संसारी जीव अशुद्ध है तथा संसारी जीव के चैतन्य के साथ कुछ और (कर्म) भी है। संसारी जीव शुद्धावस्था में नहीं। अतः जैन-दर्शन में मुक्तावस्था से पहले 'शुद्ध-जीववाद' को कोई स्थान नहीं; उसमें केवल 'संसारी-जीववाद' (जीव+कर्म) को ही स्थान है। 'संसारी जीववाद' से जीव 'जीव-वाद' को कैसे प्राप्त करे ?

'संसारी जीववाद' से 'शुद्ध जीववाद' प्राप्त करने की माध्यमिक प्रक्रिया को पुनर्जन्मवाद कहते हैं। भारतीय दर्शनों में पुनर्जन्मवाद के सिद्धान्त का महत्वपूर्ण स्थान है किन्तु कतिपय दर्शनों में पुनर्जन्मवाद एक अनियन्त्रित जीवन-सरणि है, जिसका कोई उद्देश्य नहीं। उसे केवल प्रकृति का खेल एवं माया का प्रसार ही समझ लिया गया है। यह दार्शनिक अव्यवस्था है क्योंकि इस स्थापना का कोई प्रयोजन नहीं। जैन-दर्शन में पुनर्जन्मवाद का सिद्धान्त आधुनिक विकासवाद का सिद्धान्त ही है।

८

पुनर्जन्मवाद और कर्मफलवाद

जीव और पदार्थ के सम्बन्ध में मार्क्सवाद की धारणा यह है:—

Beauty exists but never apart from beautifull things. Goodness exists but never apart from good people. Thought exists but never apart from-birains The simple truth is that birains and matter are inseparable, but at the same time distinct (Page II).

(सौन्दर्य का अस्तित्व है किन्तु सुन्दर पदार्थ से भिन्न नहीं। भलाई का अस्तित्व है लेकिन भले पुरुषों से भिन्न नहीं। विचार का अस्तित्व है किन्तु मस्तिष्क से भिन्न नहीं। सरल सत्य यह है कि गुण और पदार्थ अभिन्न हैं किन्तु साथ ही भिन्न भी है। -पृष्ठ ११)

जीववाद और अजीववाद का कितना सुन्दर विवेचन है! संसार में जीव को अजीव से निरन्तर संयुक्त ही देखा जाता है। कोई जीव ऐसा नहीं जिसके साथ अजीव (कर्म-पुद्गल) न लगे

हों और कोई अजीव ऐसा नहीं जो कभी न कभी जीव से सम्बन्धित न रहा हो।

पदार्थ (जीव+अजीव) अनादि है। इसका कोई प्रारम्भ नहीं। किन्तु मानवोय सरलता के लिये इसका कृत्रिम प्रारम्भ स्थापित किया गया है। जीव की इस प्रारम्भिक अवस्था को जैन-शास्त्रों में निगोद कहा है। निगोद के एक शरीर (one unit) में अनंत जीव होते हैं जो साथ ही जन्मते हैं और मरते हैं। तीन लोक व्यापी निराधार अव्यावाध इकाई सूक्ष्म निगोद व बाधा-सहित और आधारित इकाई बादर निगोद है। एक समय में एक निगोद में अनंतानंत जीव उत्पन्न होते व मरते हैं। जैन-शास्त्रों के अनुसार जितने जीव मुक्तावस्था को प्राप्त होते हैं उतने जीव निगोद में से निकलकर व्यवहार राशि के जीव बन जाते हैं। नित्य निगोद के जीव पर्याय को प्राप्त कर लेते हैं। वास्तव में हर समय में परिमित जीव मोक्ष में जाते हैं और उतने ही जीव निगोद से निकलकर व्यावहारिक राशि धारण करते हैं। अतः यह गणना गौण ही है। निगोद से निकलने के बाद जीव प्रगति की ओर अग्रसर होता है और वह जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, वनस्पति और तिर्यंच का पर्याय धारण करता हुआ मानव रूपतक धारण करने की क्षमता रखता है। यह विकास-पद्धति है। मार्क्सवाद (दर्शन) में भी इस पर विचार किया गया है।

No matter without movement and no movement without matter (Page 46).

Matter, says Engels, moves in an eternal circle competing it's trajectory in a period so vast that in comparision with it our earthly year is as nothing ; in a cycle in which the period of highest development, namely the period of organic life with its crowning achievement—self consciousness, is a space just as comparatively minute in the history of life and of self consciousness, in a cycle in which every particular form of the existance of matter—be it the sun or a nebula, a particular animal or animal species, a chemical combination or decomposition is equaly in transition ; in a cycle in which nothing is eternal, except eternally changing, enternally moving matter and the laws of its movement and change (Page. 68)

(कोई पदार्थ अगतिशील नहीं और कोई गति पदार्थ रहित नहीं। (पृष्ठ ४६) एन्जिल्स ने कहा है कि पदार्थ एक अनादि-चक्र में भ्रमण कर रहा है और वह अपने एक भव को इतने लम्बे अरसेमें समाप्त करता है कि वह हमारे एक सालके अरसे के समीप (समक्ष) नगण्य है। इस चक्र के सर्वोच्च विकास में पदार्थ अपनी सुनहरी सफलता को प्राप्त करता है। उसमें हल-चल उत्पन्न होती है और वह स्वचैतन्य को प्राप्त करता है। यह

विकास असंख्य सीमाओं को पार कर के उसके बाद होता है, जो सीमाएं जीवन और चैतन्य के इतिहास में नगण्य सी हैं। पदार्थ का यह चक्र निरन्तर गतिशील रहता है चाहे पदार्थ के अस्तित्व के विशेष पर्याय का स्वरूप कैसा ही अर्थात् सूर्य, तारामण्डल, एक विशेष प्राणी या प्राणी की जाति, एक रसायनिक मिश्रण या विघटन क्यों न हो! पदार्थ के इस भव-चक्रमें कुछ भी नित्य नहीं है, केवल मात्र अनादि काल से परिवर्तन और भ्रमण करने वाला पदार्थ और उसकी पर्यायशीलता और भव-भ्रमण के नियम ही नित्य, सनातन, अजर, अमर अनन्त और अनादि हैं। —पृष्ठ ६८)

देखिये, जीवन के विकास का कितना सहज और स्वच्छ वर्णन है। निगोद काय के जीव अनंत काल में जाकर कीड़े मकोड़े का जन्म प्राप्त करते हैं और उनमें हलचल का आभास होने लगता है। निगोद के जीवों के लिये यह एक महान् सफलता है। इस अनन्त काल में अनंत स्वरूपों या पर्यायों के परिवर्तन के बाद ही उनको दुलभ कीड़े मकोड़े का भव प्राप्त होता है। जीव का कोई स्वरूप क्यों नहीं? वह स्थिर नहीं, वह निरंतर पर्यायशील है। यदि इन्हीं विचारों को प्राच्य ऋषि प्राच्य भाषामें वर्णित करते तो कौन इन्हें पाश्चात्य-विद्वानों के पाश्चात्य विचार कहने का साहस करता?

निगोद जीवों के भिन्न भिन्न सांसारिक पर्यायों के भवचक्र का दार्शनिक आधार क्या है? पुनर्जन्मवाद ही इस समस्या को

सुलझाता है। पुनर्जन्मवाद क्या है ? न तो यह हौआ है और न प्रतिक्रियावाद। यह शुद्ध प्रगतिवाद है। अब तक संसार के सामने इसके कलुषित और विकृत रूप को ही रखा गया। इसके क्रान्तिकारी और जीवन-विकास में अनिवार्य शुद्ध स्वरूप को संसार के सामने नहीं रखा गया। राजनैतिक प्रगतिवादी इसका विरोध, इसके आचरणवाद के कारण करते हैं। पुनर्जन्मवाद को-स्थायी हितों और स्थापित स्वार्थों को नींव को मजबूत बनाने और उनके अस्तित्व को अनिवार्य सिद्ध करने के लिये काम में लाया जाता है। समाज की यह श्रेणी वास्तव में प्रगतिवाद की शत्रु है। किन्तु पुनर्जन्मवाद का इस प्रकार की किसी स्थापना से सौ कोसों का भी सम्बन्ध नहीं। वह तो मनुष्य को सुन्दर कर्म करने और विकास के मार्ग पर बढ़ाने वाला है।

किसी जीव की कल्पना उसकी वर्तमान अवस्था में लीजिये। इस जीव को इस समय कोई कर्म करने के कारण एक अवस्था प्राप्त होती है। वह अवस्था जीव का 'उत्पाद' होता है। उस अवस्था के आधार पर आगामी क्रिया का प्रारम्भ होता है। वह अवस्था या तो विकासकी क्रियाका प्रारम्भ करता है या वह उसमें बाधक होता है। जब वह उसमें विकास करने की सीमा तक पहुंच जाता है और आगामी विकास के अयोग्य हो जाता है, तब उसका व्यय प्रारम्भ हो जाता है और दोनों की संघर्ष रूप प्रक्रिया से नवीन कर्म-शीलता की उत्पत्ति होती है। जिससे नवीन अवस्था की उत्पत्ति होती है। इस नवीन अनुभव से प्राचीन

अनुभव के कुछ संस्कार और प्राचीन व्यय के भी कुछ संस्कार विद्यमान रहते हैं और दोनों के कुछ कुछ अंशो का विनाश हो जाता है। जीव के एक विशिष्ट भव में यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है या आधुनिक शब्दों में इस प्रकार कहा जाय तो कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि जीव निर्धारित काल तक ही इस प्रकार अनुभव शृङ्खला को ग्रहण करने के योग्य होता है। और उसका भौतिक स्वरूप भविष्य में इस प्रकार के अवस्था प्राप्त करने में सहायक नहीं हो पाता। इस स्थिति में अनुभव वृद्धि की इस शृङ्खला में अस्थायी स्थिरता आ जाती है और जीव अपने पर्याय को बदलने में क्रियाशील हो जाता है। जीवन के पर्याय बदलने को ही सांसारिक भाषा में 'मृत्यु' कहा जाता है। वास्तव में मृत्यु नामक कोई तत्त्व है ही नहीं। जीव आनादि और अनन्त है। यदि हम एक घर में गुजारा न कर सकें तो दूसरा घर बदलने में कोई हानि नहीं; किंतु जब हम घर बदलते हैं तो अपने सामान को साथ ही ले जाते हैं उसको वहीं छोड़ कर नहीं चले जाते। इसी प्रकार जब जीव अपने पर्याय को परिवर्तित करता है, तो वह पूर्व सञ्चित अनुभवों को सूक्ष्मरूप से अपने साथ ले जाता है। यही कर्म-फलवाद है। वही जीव नवीन पर्याय धारण कर अपने पूर्व सञ्चित अनुभव या कर्म के आधार पर फिर जीवन की क्रिया नूतनता से प्रारम्भ करता है और अनुभवों के उत्पाद, व्यय, संघर्ष और नवीन उत्पाद, व्यय आदि का निरन्तर चक्र चलता ही रहता है। यह चक्र कभी नहीं

रुकता, इसे रोकने में कोई समर्थ भी नहीं। यह सूर्य, तारामण्डल, पृथ्वी, वनस्पतिकाय आदि सब पदार्थों में बराबर अव्याबाध गति से चलता रहता है।

पुनर्जन्मवाद इस तथ्य की स्थापना नहीं करता कि तुम्हारे जीवन की जो स्थिति है वह तुम्हारे कर्मों के अनुसार है, उसे भोगना ही पड़ेगा। तुम अब उसमें परिवर्तन नहीं कर सकते। इसलिये स्थापित सामाजिक संगठन में हस्तक्षेप करना मूर्खता है। इस प्रकार की स्थापना दर्शन और धर्म के सर्वथा प्रतिकूल है और इस प्रकार की स्थापना करने वाला पुनर्जन्मवाद के साथ घृणित और विभत्स व्यभिचार करता है। पुनर्जन्मवाद का संदेश यह है कि पिछले शुभ कर्मों के संचय से तुमने वर्तमान स्थिति पाई है। इसको आधार मानकर भावी विकास के लिये तत्पर और क्रियाशील बनो। तुम स्वतन्त्र हो और अपनी वर्तमान स्थिति को बदलने की क्षमता रखते हो। ऐसे सुन्दर कर्म करो कि असमानता का नाश हो जाये। जो कुछ पहले हो चुका है वह पुनर्जन्मवाद का विषय नहीं है। पुनर्जन्मवाद पाश्चात्याभिमुख नहीं वरन् पूर्वाभिमुख है। कोई भी व्यक्ति या वाद जो बात हो चुकी है उसपर अन्तर नहीं डालता। यह तो उसकी उपयोगिता को नष्ट करने वाला होता है। वह तो आगामी कर्म के लिये प्रेरित करनेवाला ही होता है। पुनर्जन्मवाद विकास और प्रगति का सहायक है, शत्रु नहीं। यदि ऐसा नहीं है तो वह पुनर्जन्मवाद नहीं बल्कि पूर्व मृत्युवाद है। पुनर्जन्मवाद पर्यायवाद (Theory of transition) है। जैन-दर्शन और मार्क्स-दर्शन में विकासवाद के इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।

पर्यायवाद

जीव का भव-भ्रमण जीव और कर्म की संयुक्त-क्रिया है। पाप व पुन्य जनित दुःख व सुख जीव ही भोगता है अतः शब्दा-डम्बर के निवारण के हेतु यदि यह कह दिया जाये कि पदार्थ (जीव+कर्म) की अवस्था परिवर्तित होती रहती है तो कोई अशुद्धि नहीं। एक इकाई के परिवर्तन से यहां तात्पर्य है, उस इकाई का कौनसा अंश वस्तुतः परिवर्तन करता है और कौनसा नहीं, यह गौण है। इस गौण विचार से दार्शनिक गुत्थियाँ सुलझाने में कोई सहायता नहीं मिलती, अतः वह व्यर्थ भी है। मार्क्स-दर्शन में भी ये विचार मिलते हैं।

Every thing flows, Every thing Changes, there is nothing absolutely slagnant, nothing unchange-able in the processes of actuality (Page 127)

All flows, nothings at rest nor ever remains the same—this one of greatest dialecticians in history, the anicent Greek Philosopher Heradites used to characterise the every changing face of nature (Page 201)

(सब वस्तुएं गतिमान हैं। सब कुछ परिवर्तनशील है। संसार की कोई भी वस्तु स्थिर नहीं। वास्तविकताका कोई व्यवहार-चक्र अपरिवर्तनशील नहीं—पृष्ठ ११७

सब कुछ गतिमान है, कुछ भी स्थिर नहीं, न कभी कुछ स्थिर रहता है—यह बात इतिहासके एक महान गुणात्मक सत्कार्यवादी यूनानके दार्शनिक हिरेडटिस ने प्रकृतिके सर्वदा परिवर्तनशील गुण के सम्बन्ध में कही है। — पृष्ठ २०१)

इस कथन में पुद्गलवाद या प्रकृतिवाद का आभास मिलता है। पुद्गल में परिवर्तन जैन स्थापना के साथ कितनी आश्चर्य-जनक साम्यता है इस स्थापना की। यहां पर पर्याय को ही प्रमुखता दी गई है। परिवर्तन शक्ति की स्थापना का ध्येय गौण है।

जीव कर्म-बन्धन से परतन्त्र है। वह स्वतन्त्र होना चाहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जितना कर्म-बन्धन उसके साथ संलग्न हो चुका है वह उसे पूर्णतया नष्ट करना चाहता है। अतः चैतन्यमय जीव ही क्रिया शक्ति का श्रोत है। उसी में परिवर्तन लाने की शक्ति है। जीव का स्वभाव स्वतन्त्रता का है। वह स्वत-न्त्रता की ओर प्रगतिशील है। जीव की पूर्ण स्वतन्त्रता ही मोक्ष है। अतः मोक्ष बिना स्वतन्त्रता के सम्भव नहीं। स्व० महात्मा गांधी ने अभी हाल ही की बङ्गाल यात्रा के समय एक भाषण में कहा था कि "स्वतन्त्रता के बिना मुक्ति नहीं। जीव के स्वातन्त्र्य बिना उसे सुख नहीं और देश की स्वतन्त्रता के बिना देश को सुख नहीं।" वास्तव में स्वतन्त्रता ही सुख है। स्वतन्त्रता का जैसा

स्वरूप होगा वह वैसा ही सुख प्रदान करेगा। आत्मिक स्वतन्त्रता आत्मिक सुख, राजनैतिक स्वतन्त्रता राजनैतिक सुख और आर्थिक स्वतन्त्रता आर्थिक सुख प्रदान करने वाली हो सकती है अन्यथा नहीं। अतः प्रत्येक जीव को जिस प्रकार का सुख वह चाहता है उस प्रकार की स्वतन्त्रता के लिये निरन्तर प्रयत्नशील होना चाहिये।

१०

मन की उत्पत्ति

हमारे कार्यों की प्रेरक सचेतन बुद्धि है। जीव सचेतन बुद्धि के प्रयोग द्वारा स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर हैं। अचेतनता से सचेतनता की क्रान्ति कब और कैसे सम्भव होती है ? मार्क्स-दर्शन के विचार इस विषय पर भी स्पष्टतया सुलझे हुए हैं।

At one level, matter is mindless, at the next it is minded. Matter itself thinks when organised in a brain (Page 10)

Dialectical materialism does not believe that life and mind have always existed in imperceptible degrees and had only to grow in quantity until they were big enough to be noticed, thus emerging. It believes that they appeared for the first time at a definite period in the history of matter, and that they are the inevitable consequence or con-comitant of certain material patterns (Page 13)

(एक भव में पदार्थ अमनस्क रहता है और दूसरे भव में वह समनस्क हो जाता है। जब मस्तिष्क का निर्माण व संगठन

हो जाता है तब पदार्थ में स्वयं विचार शक्ति उत्पन्न हो जाती है।
—पृष्ठ १०

द्वन्द्वात्मक पदार्थवादी इस तथ्य में विश्वास नहीं करता कि जीव और मन का सर्वदा से आदर्शनीय अवस्था में अस्तित्व है और उसे केवलमात्र परिमाण में ही बुद्धि प्राप्त करने की आवश्यकता होती है तबतक, जबतक कि वह दिखाई देने के लिये काफी बड़ा हो जाय और मूर्तरूप प्राप्त कर ले। द्वन्द्वात्मक पदार्थवाद का विश्वास है कि मन और जीव पदार्थके इतिहास के विशिष्ट काल में प्रथम बार अस्तित्व में आये और वे कतिपय पदार्थवादी सांचे या पर्याय के अनिवार्य फलस्वरूप अस्तित्व में आये।
—पृष्ठ १३)

यहां पर अस्तित्व में आने का अर्थ प्रकाशमान होने से है। इस विषय का विवेचन पहले विशद रूप से हो चुका है कि मार्क्स-दर्शन के अनुसार पदार्थ में गति या विकास-शक्ति सर्वदा अविलग रूपसे रहती है। जैन-दर्शन में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पति में भी जीव की स्थापना की गई है। मार्क्स-दर्शन के अनुसार भी इसमें परिवर्तन-शक्ति है। अतः जैन व मार्क्स मान्यता में कोई भेद नहीं। मार्क्स की भाषा में कुछ अस्पष्टता जरूर है और वह यह है कि वह जीवन के दृश्यमान रूप जैसे कीड़ा-मकोड़ा को ही जीवन कहता है उसके अदृश्यमान रूप को अजीव ही कहता है। ऐसा विवेचन भारत व विश्व के अन्य दर्शनों में भी इसी प्रकार हुआ है जिनमें वायु आदि को भूत स्थापित

किया गया है किन्तु उनकी भूत की परिभाषा में, उनमें और मार्क्स-दर्शन में आकाश पाताल का अन्तर है। वे भूत में गतिशीलता को स्वीकार नहीं करते, जब कि मार्क्सवाद का भूत गतिशील है। अतः जैन-दर्शन और मार्क्स-दर्शन के शब्दों में कुछ रूपान्तर होते हुए भी दोनों की 'जीव' की परिभाषा समान है और दोनों की जीव-तत्त्व एवं अजीव-तत्त्व विषयक मान्यताओं में तनिक भी भेद नहीं।

मन के अस्तित्व के सम्बन्ध में जैन-दर्शन और मार्क्स-दर्शन की शब्दावली आश्चर्यजनक रूपसे समान है। जैन-दर्शन की यह मान्यता है कि जीव निगोद से निकल कर पञ्चेन्द्रिय जीव तक का भव (Pattern trajectory etc) प्राप्त कर सकता है किन्तु अनिवार्यतः उस में मन का होना आवश्यक नहीं। जैन-दर्शन में पञ्चेन्द्रिय प्राणी सन्नी व असन्नी, संज्ञी या असंज्ञी एवं अमनस्क और समनस्क दो भागों में विभाजित है। अमनस्क जीव भव से मनस्क पञ्चेन्द्रिय जीव के भव (Pattern) को प्राप्त करना एक महान् क्रान्तिकारी परिवर्तन है। यहां सत्कार्यवादी विकास को किञ्चित्-मात्र भी स्थान प्राप्त नहीं। जैन-दर्शन अमनस्क पञ्चेन्द्रिय जीव-भव तक अणु रूप में भी मन-तत्त्व को स्वीकार नहीं करता। मनोवर्गणा उसके लिये विदेशी है। समनस्क पञ्चेन्द्रिय भव में ही मन अस्तित्व में आता है। उससे पहले किसी भव में उसका अस्तित्व कदापि नहीं।

मन-तत्त्व की कल्पना के सम्बन्ध में दोनों दर्शनों में एक

क्रान्तिकारी समानता और भी है। मार्क्स दर्शन की स्थापना है कि—

The result was that mind came to be regarded as a mere effect of matter and materialism became the popular Philosophy. (Page 40)

(इस दार्शनिक संघर्ष का निष्कर्ष यह निकला कि मन को पदार्थ का ही फल माना जाने लगा और पदार्थवाद सार्वजनिक दर्शन बन गया। —पृष्ठ ४०)

जैन-दर्शन भी मन को पदार्थ (जीव+कर्म) का ही फल मानता है। मन-तत्त्व न तो मुक्तावस्था में ही विद्यमान होता है और न अजीवावस्था में। मन की उत्पत्ति का क्रिया-स्थान जीव और कर्म का संलग्नता से परिवर्तनशील होना है। मन-तत्त्व अजीव तत्त्व है किन्तु वह जीव-तत्त्व की सहयोगिक प्रक्रिया से अस्तित्व में आता है। कई भारतीय दर्शन मन व आत्मा में कोई भिन्नता नहीं मानते किन्तु जैन-दर्शन स्पष्टतया मन को जीव से भिन्न अजीव तत्त्व मानता है। यही मान्यता मार्क्स-दर्शन की है।

११

जीव विकास की योजना

मार्क्सवाद ने जीव के विकास के विस्तार पर भी विचार किया है—

Movement as applied to matter is change in general which comprises an infinite number of concrete aspects of change (Page 231)

The movement of a thing itself movement defines its general nature, its uniqueness, its quality. Engels was right, the world consists of processes of qualitatively unique movements of matter. The quality of a thing is given by the particular kind of movement that is fundamental to it. (Page 233)

The world does not consist of readymade finished objects (Engels), matter is in ceaseless development. (Page 243)

(पदार्थ के साथ गति का अर्थ सामान्य परिवर्तन से है, जो पर्याय के असंख्य ठोस रूपों में कारणरूप होता है। —पृष्ठ २३१

वस्तु की गति उसका स्व-विकास, उसकी आन्तरिक अवस्था की प्रतीक होती है। वह उस वस्तुका अद्वितीयपन और उसका गुण है। एन्जिल्स ने सही कहा है:—संसार व्यवहार-चक्रों का

समूह है जो व्यवहार-चक्र पदार्थ की अद्वितीय गुणात्मक गति-शीलता के कारण से अस्तित्व में आते हैं। वस्तु की आन्तरिक गतिशीलता की मौलिक किस्म के अनुरूप ही वस्तु का गुण प्रकट होता है। — पृष्ठ २३३

संसार नित्य निर्मित पूर्ण वस्तुओं के समूह से नहीं बना है। पदार्थ अश्रान्त विकास चक्र में तल्लीन है। —पृष्ठ २४३)

यहाँ पर पुनर्जन्मवाद या विकासवाद के उस पहलू का दिग्-दर्शन कराया गया है, जहां पर कार्य कारण परम्परा के अनुसार वस्तु का स्वरूप निर्मित होता है। जैन दर्शन के अनुसार किसी व्यक्ति को रूप, खानदान लक्ष्मी, प्रसिद्धि और आयुष्य-अच्छे या बुरे-उस व्यक्ति की आन्तरिक गतिशीलता या तज्जनक कर्मों के फलस्वरूप मिलते हैं। आन्तरिक गतिशीलता और बाहरी स्वरूप में भिन्नता का होना असम्भव है। क्योंकि कार्य कारण के अनु-रूप ही हो सकता है। इस प्रकार प्रकारान्तर से मार्क्स-दर्शन को पुण्य व पाप व तज्जनक ऋद्धि एवं समृद्धि और पतन व ह्रास भी मान्य हैं, क्योंकि वस्तु का गुण उसकी आन्तरिक अवस्था से प्रकट होता है।

१२

विकासवाद और क्रान्तिवाद

विकासवाद और क्रान्तिवाद (सत्कार्यवाद और गुणात्मक-सत्कार्यवाद) का परस्पर क्या सम्बन्ध है और विकास की किस श्रेणी पर क्रान्ति अस्तित्व में आती है; इस विषय पर भी जैन-दर्शन और मार्क्स-दर्शन एक मत है।

Up to the known limits of quantitative, change it remains quantitatively the same, but at the determined stage change of quantity leads to change of quality ; or as Hegel said, quantity goes over into quantity instead of the former quality there appears a new one.

The transition of quantity into quality is one of the basic law of diabetic. It is the law of the emergence of the new, which shows now in the course of gradual changes the leap from one quality to another is prepared. (Page 272—273)

Indeed if there are no leaps then there are also no radical change, and all development amounts merely to quantitative changes of that which always existed that which was microscopically small has now become big, that which was big has become small, but nothing now, nothing that did not exist before in same form, can appear. (Page 278)

There is purely no uninterrupted developement of a whole process in its entirely ; the change of basic quality of a things is infinitely subordinated to interrupted changes of its aspects. In this continuous interruptedness of the infinite number of qualitatively definite aspects of a thing, proceeds that relatively uninterrupted developement of its general, basic quality which thus prepares for its leap. (Page 284)

At first there are qualitative changes, then a change of quality ; in other words, at first there are uninterrupted changes—then a leap. There you have the unity of opposites, the uitny of evolution and of the leap, of interruptedness and of uninterruptedness. But Engels, approach is faire more concrete and profound. Engels shows the mutual penetration of these opposites-firstly the interrupteness in the connection of the seperate links of a leap. (Page 285)

It is true of course that nothing emerges from nothing. The properties which became elements of the new quality are actually created in the old. But until the basic connections of the old quality are broken these properties belong wholely to the old and in measure denote the gradual growing of one quality into another. These properties are contradictory. Within the bounds of the old they include in themselves only premeses for the emergence of the new, and are only a condition of the leap, and only through a radical break, through a leap, do they became elements of the new. (Page 289)

(पारिमाणिक परिवर्तन की विशिष्ट सीमा तक वस्तु गुण वही रहता है; किन्तु एक निश्चित श्रेणी पर पहुंचने के पश्चात् परिमाण के परिवर्तन से गुणात्मक परिवर्तन भी हो जाता है या जैसा कि जर्मन दार्शनिक हीगल ने कहा है, परिमाण गुण के पास चला जाता है और पूर्ण गुण के स्थान में एक नवीन गुण अस्तित्व में आ जाता है। परिमाण का गुण में परिवर्तित होना गुणात्मक-सत्कार्यवाद के मौलिक सिद्धान्तों में से एक है। यह नवीन वस्तु की उत्पत्ति का सिद्धान्त है। यह विकास-सिद्धान्त है जिस से यह ज्ञात होता है कि क्रमिक विकास में एक गुण से दूसरे गुण की ओर कूद किस प्रकार अस्तित्व में आती है।—पृष्ठ २७२-२७३

वास्तव में यदि जीवन में कोई कूद (गुणात्मक परिवर्तन) न हो तो मौलिक परिवर्तन ही असम्भव होंगे। इससे जो कुछ अस्तित्व में था उसी का विकास प्रक्रिया से पारिमाणिक परिवर्तन होगा। जो अणुसम छोटा था वह बड़ा हो गया है और जो विशाल था वह छोटा हो गया है लेकिन इससे कोई नया तत्त्व, ऐसा तत्त्व जिसका पहिले अस्तित्व न रहा हो, प्रकाश में नहीं आ सकता। —पृष्ठ २७८

किसी भी व्यवहार-चक्र का सम्पूर्ण विकास सर्वथा अहस्तक्षेपित नहीं हो सकता है। किसी वस्तु का मौलिक गुणों का परिवर्तन, इसके भिन्न भिन्न पहलुओं के हस्तक्षेपित परिवर्तनों पर आधारित है। किसी वस्तु के संख्यातीत निश्चित गुणात्मक पहलुओं के निर्बाध हस्तक्षेप के साथ सामान्य रूप से सापेक्षतया

मौलिक गुणात्मकरूप अहस्तक्षेपित विकास का सम्बन्ध है जिससे कूद (क्रान्ति गुणात्मक परिवर्तन) का मार्ग तैयार हो जाता है।
-- पृष्ठ २८४

प्रथम पारिमाणिक परिवर्तन होते हैं और फिर गुणात्मक परिवर्तन। दूसरे शब्दों में प्रथम हस्तक्षेपित परिवर्तन और फिर कूद होती है। इस अवस्था के विरोधों का समन्वय हो जाता है, विकास और कूद में तादात्म्य भाव स्थापित हो जाता है और हस्तक्षेप और अहस्तक्षेप मिल जाते हैं; किन्तु एन्जिल्स का दृष्टिकोण विशेष रूप से स्पष्ट और गम्भीर है। वह दोनों विरोधों का पारस्परिक सम्मिश्रण सिद्ध करता है। प्रथम विकास में हस्तक्षेप और द्वितीय कूद के विभिन्न अंशों के सम्बन्ध में सापेक्षित अहस्तक्षेप।—पृष्ठ २८५

यह वास्तव में सत्य है कि निषेध से निषेध की ही उत्पत्ति होती है। वे सामग्री जो नवीन गुणों की आधार तत्त्व बनती हैं वास्तव में प्राचीन गुण से ही उत्पन्न होती हैं। किन्तु जब तक प्राचीन गुण के मौलिक सम्बन्ध टूटते हैं तब तक वे प्राचीन गुण से ही सम्बन्धित समझी जाती हैं और किसी भी सूरत में एक गुण का दूसरे गुण में विकास के होने को जाहिर नहीं करते। ये सामग्री विरोधात्मक हैं। प्राचीन गुण की सीमा में उनमें केवल मात्र नवीन गुण की उत्पत्ति के मौलिक तत्त्व ही निहित रहते हैं और वे केवल मात्र कूद (क्रान्ति) के प्राथमिक नियम हैं और मौलिक विच्छेद या क्रान्ति के द्वारा ही वे नवीन गुण के तत्त्व बन पाते हैं। पृष्ठ २८६

इन उद्धरणों में पदार्थ-दर्शन के क्रान्तिवाद सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। पारिमाणिक परिवर्तन उन्हें कहते हैं जो एक सीमा में सुधार के द्वारा सम्भव हो। पानी को खूब गर्म करते जाइए, वाष्प बिन्दु के पहुंचने तक उसकी गर्मी में परिमाणिक परिवर्तन होगा। वस्तु का वही स्वरूप जैसा का तैसा कायम रहेगा। जब जल वाष्प बन जावेगा तब वह परिवर्तन पारिमाणिक नहीं किन्तु गुणात्मक कहलायेगा। पारिमाणिक और गुणात्मक परिवर्तन में यह भेद है कि प्रथम में पर्याय कायम रहता है जबकि द्वितीय में पर्याय बदल जाता है। प्रथम विकास-सिद्धान्त और द्वितीय क्रान्ति-सिद्धान्त कहलाता है। हमें 'क्रान्ति' शब्द से घबराने की आवश्यकता नहीं। प्रकृति और समाज में क्रान्ति निरन्तर होती रहती है। एक पर्याय से दूसरे पर्याय को धारण करने का नाम ही तो क्रान्ति है। जीव कीड़ के पर्याय को छोड़कर कुत्त का पर्याय धारण करता है, यह क्रान्तिकारी कूद है और यही गुणात्मक परिवर्तन है। कीड़ा जब तक जन्म से लगाकर वृद्धावस्था तक बढ़ता है तब तक उसका पारिमाणिक परिवर्तन ही होता है। यही विकास है। एक ही पर्याय या स्वरूप के कायम रहते हुए भी क्रांति या गुणात्मक परिवर्तन हो सकता है। यह व्याष्टिगत या समष्टिगत दृष्टिकोण के भेद का फल है। विकास व क्रान्ति में भेद रेखा यह है कि गुण के आधारभूत तत्त्वों में परस्पर भिन्नता हो। जो तत्त्व प्रथम अवस्था में विद्यमान थे वे उससे विलग होकर दूसरे नवीन अवस्था के आधार-

भूत तत्त्व बन जायं। भव-भ्रमणवाद इसी सिद्धान्त का विकसित रूप है। इस संदर्भ में 'मृत्यु' नामक तत्त्व पिघल कर हवा में विलीन हो जाता है। मृत्यु तत्त्व की स्थापना कोई बुद्धिमान प्राणी नहीं कर सकता। भव-भ्रमणवाद तो इस प्रणाली में आत्मिक विकास की एक अनिवार्य सीढ़ी है और वह है जीव के कल्याण के लिए। यदि जीव के विकास में इस क्रान्ति को स्थान न हो तो उसके लिए मोक्ष प्राप्ति एक स्वप्न ही सिद्ध होगा।

पदार्थ दर्शन में हस्तक्षेपवाद और अहस्तक्षेपवाद का सम्बन्ध विकासवाद और क्रान्तिवाद से हैं। हस्तक्षेपवाद-क्रान्तिवाद और अहस्तक्षेपवाद-विकासवाद का सहायक है। पारिमाणिक परिवर्तन अहस्तक्षेपवाद के नियम से होते हैं जबकि गुणात्मक परिवर्तन हस्तक्षेपवाद के नियम से। हस्तक्षेपवाद जीवन विकास का सिद्धान्त है और यह क्रान्ति की अवस्था को उत्पन्न करनेवाला है। क्रान्ति के बिना जीवन में प्रगति नहीं। क्रान्ति के बिना आत्मा कर्ममल का नाश नहीं कर सकता। क्रान्ति के बिना जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

जब किसी जीव के अनुभवों को विकास के लिए स्थान नहीं रहता तब वह अपने उसी रूप में स्थित नहीं रह सकता। अनुभव अपने बोझ से फटने लगता है और इसमें तोड़-फोड़ आन्दोलन प्रारम्भ हो जाता है। यह वस्तु का आन्तरिक विरोध है। वास्तव में वस्तु की उत्पत्ति के साथ ही उसका विरोध छिपा हुआ है। उत्पाद के साथ ही व्यय उत्पन्न हो जाता है। जब

उत्पाद अपनी उपयोगिता को समाप्त कर बैठता है, बल्कि वह विकास में बाधक हो जाता है तब उसका आन्तरिक विरोध छटपटाने लगता है और वह उत्पाद के अस्तित्व को सहन नहीं कर सकता। 'उत्पाद' की शक्ति गलित हो जाती है और व्यय की शक्ति तेज हो जाती है। ऐसी अवस्था में व्यय उत्पाद पर छा जाता है। वह उसके गुण छीन लेता है और नवीन गुण को जन्म देता है। वह फिर नवीन उत्पाद बन जाता है और आगामी क्रिया प्रारम्भ करता है। इस प्रकार प्रकृति और समाज में विरोधों का सामञ्जस्य होता रहता है। इस सामञ्जस्य का मूल कारण क्रान्ति है, विकास नहीं।

सामाजिक जीवन से एक दृष्टान्त लीजिए। आज समाज का पर्याय पूंजीवाद है। जब पूंजीवाद बढ़ कर साम्राज्यवाद का रूप धारण कर लेता है तो वह पूंजीवाद का सर्वोत्कृष्ट पारिमाणिक परिवर्तन है। साम्राज्यवाद अपने ही बोझ से दबने लग जाता है और इसका आधार शोषितों का निरन्तर शोषण होता है। जिससे विरोधी तत्त्व प्रकट होते है। साम्राज्यवाद का नाश होकर समाज में नवीन गुण की स्थापना होती है। यह स्थापना ही क्रान्ति या तज्जनित कूद है।

एक उदाहरण आध्यात्मिक क्षेत्र का भी लीजिए। एक जीव निरन्तर धार्मिक काम करता है। अहिंसा व्रती है, सत्य बोलता है, ब्रह्मचारी है, दूसरे की चोरी नहीं करता और परिग्रह से विमुख है। वह पुण्यों का सञ्चय करता है और उसके पूर्व

सञ्चित कर्मों की निर्जरा होती है। इस पर्याय में भोगे जाने वाले कर्मों को वह भोग लेता है और नवीन पुण्यात्मक कर्मों के भोग का इस भव में अवकाश नहीं। ऐसी अवस्था में जीव के पर्याय का परिवर्तन होगा। सम्भव है वह देवत्व प्राप्त करे। यह देवत्व प्राप्त करना एक क्रान्तिकारी परिवर्तन है। विकास क्रान्ति का साधन है और क्रान्ति गुणात्मक प्रगति को प्राप्त करने वाली है।

१३

संख्यावाद

गुण का ज्ञान परिमाण के बिना नहीं हो सकता। वस्तु का स्वरूप परिमाण से ही भाषित होता है और परिमाण का आभास भी वस्तु की स्थिति में ही हो सकता है। जैन-दर्शन में संख्यावाद के सिद्धान्त को बहुत महत्व प्राप्त है। जैन-दर्शन में प्रत्येक विषय का वैज्ञानिक विवेचन है और उसकी सीमाएं निर्दिष्ट है। कोई भी वस्तु अनियन्त्रित,और बाधित नहीं। नव तत्त्व, छः द्रव्य, पांच प्रकार के ज्ञान, श्रावक के बारह व्रत, साधु के पांच महाव्रत, चार गति, दस प्राण आदि प्रत्येक विषय को संख्या द्वारा निर्धारित कर दिया गया है। संख्यावाद का सिद्धान्त वैज्ञानिक और ऐतिहासिक है। मार्क्स-दर्शन में इसका स्वरूप किस प्रकार वर्णित है, यह विचारणीय है।

Pure quantity exists only in abstraction. In objective actuality, every quantitative definiteness appertains to a certain quality. Three, four, five etc as generalities do not exist, but there are three or four trees, stones, tons of iron, metres of cloth etc (Page 328)

Measurements expressing the contradictions between quantity and quality, is the law of the transition of quantitative changes into qualitative changes and of the reverse process and is therefore the law of transition from one process to a qualitatively different process. (Page 332)

Measuerment is the Law of the connection of quality and quantity.

(Page 333)

(केवलमात्र परिमाण अभाव में ही वर्तमान है। दृश्यमान जगत में प्रत्येक पारिमाणिक निश्चितता किसी निश्चित गुण से ही सम्बन्ध रखती है। तीन, चार, पांच आदि का स्वात्मवाद के रूप में अस्तित्व नहीं। किन्तु संसार में तीन या चार पत्थर, वृक्ष, लोहे के टन और कपड़ों के गज आदि हैं। —पृष्ठ—३२८

परिमाण और गुण के विरोधों का दिग्दर्शन कराते हुए, माप पारिमाणिक परिवर्तनों के अवस्थान्तर गुणात्मक परिवर्तनों और गुणात्मक परिवर्तनों के अवस्थान्तर पारिमाणिक परिवर्तनों को स्थापित करनेवाला सिद्धान्त है। अतः यह सिद्धान्त एक व्यवहार चक्र में परिवर्तन कर गुणात्मक दृष्टि से दूसरे भिन्न व्यवहार-चक्र को स्थापित करने का सिद्धान्त है। —पृष्ठ—३३२

भाव परिमाण और गुण में सम्बन्ध स्थापित करने का सिद्धान्त है। —पृष्ठ ३३३)

इससे यह प्रतिपादित होता है कि संख्या की स्थापना ठोस गुणात्मक रूप से ही हो सकती है। वास्तव में संख्याओं का

गुणात्मक परिवर्तन ही जीव को प्रगति-पथ पर अग्रसर करता है। जैन-दर्शन में सिद्ध-स्थिति इस संख्यावाद-सिद्धान्त की चरम सीमा को प्रदर्शित करती है। सिद्ध भगवान में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, सम्यग्दर्शन, अनन्त वीर्य, अटल अवगाहत्व, अमूर्तीकत्व, अगुरू लघुत्व और अव्यावाधत्व ये आठ गुण पाये जाते हैं। प्रत्येक जीव के साथ अनादिकाल से ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय, आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय ये आठ कर्म संलग्न है। इस आठ की संख्या का जीव के साथ निरन्तर सम्बन्ध है और मुक्तावस्था में वे कर्मपद से नष्ट हो जाते हैं और जीव गुणपद को धारण कर लेते हैं। इस प्रकार संख्यावाद का क्रान्ति सिद्धान्त वस्तु स्वभाव में गुणात्मक परिवर्तन स्थापित करने में सहायक होता है।

इससे यह निष्कर्ष भी निकलता है कि वास्तव में जीव को किसी भी अवस्था का गुण स्वरूप से सर्वथा भिन्न प्राप्त नहीं किया जा सकता है। आखिर शुद्ध जीव भी क्या और कैसा है ? गुणों के वर्णन से ही सिद्ध जीव का ज्ञान हो सकता है। अतः संख्यावाद वस्तु स्थिति को शुद्ध रूप में प्रकट कर उसका सम्यग्ज्ञान कराता है।

१४

मोक्ष तत्त्व

अन्तिम प्रश्न मोक्ष का है। इस बात को स्वीकार कर लेने में मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं कि मार्क्स-दर्शन में मोक्ष-तत्त्व को कोई स्थान नहीं। मार्क्स-दर्शन अभी तक एक राजनैतिक और सामाजिक दर्शन है और उसका सम्पूर्ण सम्बन्ध उस व्यक्ति से है जो गृहस्थ, समाजस्थ, राष्ट्रस्थ और विश्वस्थ है। इसका आत्मस्थ व्यक्ति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। व्यक्ति संसार में कई प्रकार से आचरण करता है। स्वामी नथमलजी ने अपने लेख 'अहिंसा' में लिखा है कि "व्यक्ति को जो बात गृहस्थ आदि के रूप में करणीय है वह उसे वैसा ही समझे, धर्म न समझे, यह प्रवृत्ति का मार्ग है। जो व्यक्ति प्रवृत्ति-कार्य निवृत्ति फल के लिये करता है वह अज्ञानान्धकार में वास करता है। प्रवृत्ति और निवृत्ति का मिश्रण उल्कापात करानेवाला होता है और स्वस्थ या आत्मस्थ के वाद का गृहस्थ के वाद के साथ मिश्रण नहीं किया जा सकता। जैन-दर्शन इससे बचता है और मार्क्स-दर्शन भी। मार्क्स-दर्शन प्रवृत्ति मार्ग का वाद है अतः वह उससे आगे जाना अपने अनुकूल नहीं समझता। मार्क्सवाद जहां तक जाता है वहां तक वह शुद्ध

और सही मार्ग पर चलता है। मार्क्सवाद को एक अपूर्ण दर्शन कहा जा सकता है किन्तु अशुद्ध दर्शन कदापि नहीं।

मार्क्सवाद में मोक्ष को स्थान नहीं, यह मार्क्स-दर्शन में एक खटकने वाला अभाव और उसकी दुर्बलता है। इससे मार्क्स दर्शन अपूर्ण रह जाता है। इससे मार्क्स-दर्शन की स्वतन्त्रता अधूरी रह जाती है। किन्तु मार्क्स-दर्शन में मोक्षवाद की कुछ झांकी अवश्य मिल जाती है। पुनरुक्ति दोष को स्वीकार कर भी मैं इस उद्धरण को देने का लोभ संवरण नहीं कर सकता।

Matter moves in an eternal cycle in which every particular form of the existence of matter is equally in transetion and in which there is nothing permanent except eternally moving matter and the laws of its movement and change (Page 311)

(पदार्थ अनादि भाव चक्र में भ्रमण कर रहा है। जिसमें पदार्थ की प्रत्येक पर्याय सर्वदा परिवर्तित होती रहती है और जिसमें कोई वस्तु नित्य नहीं है। केवलमात्र अनादि काल से भ्रमण करने वाला पदार्थ और उसके भ्रमण और परिवर्तन के सिद्धान्त ही नित्य है। —पृष्ठ ३३१

मार्क्सवाद के अनुसार भ्रमण करने के नियम नित्य है। कर्म का अन्त इन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार होता है जिनके अनुसार जीव प्रगति के पथ पर अग्रसर होता है। यहां जीव के उन कार्यों से तात्पर्य है जिनसे कर्म धीरे धीरे गल कर झड़ने लग जाता है

और अन्ततोगत्वा सर्वनाश को भी प्राप्त हो जाता है। लेखक आत्मवाद और मुक्तिवाद की भावना में बह नहीं गया है किन्तु मार्क्सवाद का दार्शनिक विश्लेषण उसी ओर ले जाता है। मार्क्सवाद में यह पुनरुक्ति है, वास्तव में मोक्षवाद को कोई स्थान नहीं किन्तु उसकी झांकी अवश्य मिल जाती है और इस विषय को मार्क्स-दर्शन में अभी विकसित करने का अवकाश है और उसकी वास्तविक आवश्यकता भी है।

१५

उपसंहार

हमने प्रस्तुत लेख में प्रारम्भ से आज तक जीव व कर्म (पदार्थ) का वर्णन किया है। जैन-दर्शन संसार में कोई वस्तु ऐसी नहीं मानता जो किसी न किसी दशा में जीव रूप में रहा हो। जैन-शास्त्र का प्रमुख उद्देश्य जीव को शुद्धावस्था तक पहुंचाना है। ऐसी दशा में इस लेख का उपयुक्त नामकरण "चैतन्यवाद" होता था किन्तु भारतीय विचारधारा में चैतन्यवाद शांकर-वेदान्त की ओर इंगित करता है। इस चैतन्यवाद में माया, मिथ्या है किन्तु जैन-दर्शन के चैतन्यवाद में माया या कर्म वास्तविक सत्ता रखता है। चैतन्यवाद का अर्थ शुद्ध जीववाद होता है किन्तु प्रस्तुत लेख में 'अशुद्ध जीववाद' से 'शुद्ध जीववाद' की ओर विचार किया गया है। ऐसी सूरत में 'चैतन्यवाद' नामकरण एक पक्षीय और अपूर्ण रहता।

प्रस्तुत लेख का विषय पदार्थ (जीव+कर्म) है। दोनों की भिन्नता स्वीकार करके भी जैन-दर्शन जीव और अजीव को एक महा सत्तात्मक पदार्थ के ही दो पहलू मानता है। अतः जैन-शास्त्रों के अनुसार हम पदार्थ की क्या परिभाषा समझें? मेरी

बुद्धि के अनुसार 'पदार्थ' की जैन-शास्त्र सम्मत परिभाषा इस प्रकार हो सकती है :—

"पदार्थ वह साकार वास्तविक सत्ता है जो अपनी मूलभूत शक्ति की गति से गुणात्मक परिवर्तन के हेतु क्रियाशील है और जिसकी अवस्था के स्वरूप का ज्ञान निरन्तर सचेतन बुद्धि को होता रहता है।"

जैन-दर्शन में सम्यग्ज्ञान सम्यक्त्व प्राप्ति के लिये आवश्यक है। सम्यक्त्व प्राप्ति बिना जीव मोक्ष प्राप्ति नहीं कर सकता। समकित शुद्धि हेतु मुमुक्षु भावसे इस लेख में पदार्थ भाव (जीवा-जीववाद) का विवेचन किया गया है। यदि मुमुक्षु जीव इस लेख की त्रुटियों को सुधारने में लेखक पर अनुकम्पा करेंगे तो उसका श्रेय उन्हीं को होगा।

नया प्रकाशन—

- धर्मबोध (प्रथम भाग)
- पदार्थवाद
- सचित्र श्रावक-प्रतिक्रमण
- विश्व-स्थिति
- तीन-संदेश
- युग-धर्म तेरापंथ
- बापू
- आंखे खोलो
- मेरा-युग
- त्याग
- अणुव्रती-संघ और अणुव्रत
- 'ज्ञान-कण' आदि

आदर्श साहित्य संघ

स र दा र श ह र (राजस्थान)

शाखा—कलकत्ता, (३१ बड़तल्ला स्ट्रीट)

जयपुर, (जौहरी बाजार)

मुद्रक—रेफिल आर्ट-प्रेस ३१, बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता।